International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 14 Issue 12 || December 2025 || PP. 80-90

भारतीय ज्ञान परंपरा: वैदिक जड़ों से समकालीन वैश्विक प्रासंगिकता तक एक समग्र अध्ययन

डॉ. भारतेन्दु सिंह तोमर
स्पोर्ट्स अधिकारी
शासकीय महाविद्यालय, दिमनी, मुरैना (म.प्र.)

सारांश (Abstract)

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम और सर्वाधिक समृद्ध बौद्धिक विरासतों में से एक है, जो केवल दार्शनिक या धार्मिक चिंतन तक सीमित नहीं रही, बल्कि जीवन के समग्र विकास का मार्गदर्शन करती रही है। इस परंपरा में ज्ञान को अनुभव, तर्क, नैतिकता और आध्यात्मिक चेतना के समन्वय के रूप में देखा गया है। वेद, उपनिषद, दर्शन, आयुर्वेद, योग, साहित्य, कला और शिक्षा प्रणाली—सभी ने मिलकर एक ऐसी ज्ञान-दृष्टि विकसित की, जो मानव और प्रकृति के बीच संतुलन पर आधारित है। भारतीय ज्ञान परंपरा का उद्देश्य केवल बौद्धिक उन्नति नहीं, बल्कि आत्मबोध, सामाजिक कल्याण और वैश्विक सद्भाव भी रहा है। औपनिवेशिक काल में इस परंपरा का अवमूल्यन हुआ, किंतु आधुनिक काल में इसके पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया तेज़ हुई है। आज पर्यावरण संकट, नैतिक पतन, मानसिक तनाव और सामाजिक असमानताओं जैसे वैश्विक मुद्दों के समाधान में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता पुनः स्थापित हो रही है। यह अध्ययन भारतीय ज्ञान परंपरा के ऐतिहासिक विकास, मूल अवधारणाओं और समकालीन महत्त्व को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): भारतीय ज्ञान परंपरा, वेद, उपनिषद, दर्शन, आयुर्वेद, योग, नैतिकता

1. भूमिका (Introduction)

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की सबसे प्राचीन, समृद्ध और निरंतर प्रवाहित बौद्धिक परंपराओं में से एक मानी जाती है। इसकी विशिष्टता इस तथ्य में निहित है कि यह परंपरा किसी एक काल, ग्रंथ या विचारधारा तक सीमित नहीं रही, बल्कि सहस्राब्दियों तक विकसित होती हुई मानव जीवन के विविध आयामों को स्पर्श करती रही है। भारतीय सभ्यता में ज्ञान को केवल बौद्धिक उपलब्धि या सूचनाओं के संग्रह के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि उसे जीवन के सत्य को समझने, आत्मा को परिष्कृत करने और समाज को संतुलित बनाए रखने का साधन माना गया है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान और जीवन, विचार और आचरण, सिद्धांत और व्यवहार के बीच कोई कठोर विभाजन नहीं दिखाई देता। भारतीय परंपरा में ज्ञान का मूल स्रोत अनुभव और चिंतन रहा है। यहाँ ज्ञान को *श्रुति* और *स्मृति* के माध्यम से ग्रहण किया गया, परंतु उसे केवल सुनने या याद रखने तक सीमित नहीं रखा गया। ज्ञान को *अनुभूति, अनुशीलन* और *आत्मबोध* की सतत प्रक्रिया माना गया, जिसमें व्यक्ति स्वयं सत्य की खोज करता है। इस दृष्टि से भारतीय ज्ञान परंपरा एक जीवंत परंपरा है, जो प्रश्न पूछने, तर्क करने और अंततः आत्मसाक्षात्कार की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती है। भारतीय समाज में ज्ञान का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत उन्नति नहीं, बल्कि सामाजिक कल्याण भी रहा है। "सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसी अवधारणाएँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि ज्ञान का अंतिम लक्ष्य समस्त मानवता का हित है। भारतीय दृष्टि में ज्ञान का परम उद्देश्य *मोक्ष, कल्याण* और *लोकसंग्रह* माना गया है। मोक्ष का अर्थ केवल मृत्यु के बाद की मुक्ति नहीं, बल्कि अज्ञान, आसक्ति और दुःख से मुक्ति भी है। इसी प्रकार, कल्याण और लोकसंग्रह की अवधारणा यह दर्शाती है कि ज्ञान का प्रयोग समाज में संतुलन, न्याय और करुणा स्थापित करने के लिए किया जाना चाहिए।

पाश्चात्य ज्ञान परंपरा में जहाँ ज्ञान को प्रायः प्रकृति पर नियंत्रण और भौतिक प्रगति के साधन के रूप में देखा गया, वहीं भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान को आत्मिक उन्नयन और नैतिक विकास से जोड़ा गया। इसका यह अर्थ नहीं है कि भारतीय परंपरा ने भौतिक जगत या वैज्ञानिक चिंतन की उपेक्षा की। इसके विपरीत, यहाँ विज्ञान, गणित, चिकित्सा और खगोलशास्त्र जैसे क्षेत्रों में

भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। किंतु इन सभी क्षेत्रों में ज्ञान का प्रयोग मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य बनाए रखने के उद्देश्य से किया गया। भारतीय ज्ञान परंपरा की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी समन्वयात्मक दृष्टि है। यहाँ विरोधी विचारधाराओं को भी संवाद और शास्त्रार्थ के माध्यम से स्वीकार किया गया। आस्तिक और नास्तिक, द्वैत और अद्वैत, कर्म और ज्ञान—इन सभी के बीच संवाद भारतीय बौद्धिक संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। इस बौद्धिक उदारता के कारण ही भारतीय ज्ञान परंपरा समय के साथ स्वयं को रूपांतरित करती रही, बिना अपनी मूल आत्मा को खोए। शिक्षा के क्षेत्र में भी भारतीय ज्ञान परंपरा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। गुरुकुल परंपरा में शिक्षा को केवल रोजगार-उन्मुख प्रशिक्षण नहीं माना गया, बल्कि उसे व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया के रूप में देखा गया। विद्यार्थी को अनुशासन, नैतिकता, आत्मसंयम और सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध कराया जाता था। गुरु और शिष्य के बीच संबंध केवल औपचारिक नहीं, बल्कि जीवनपर्यंत मार्गदर्शन पर आधारित होता था।

औपनिवेशिक काल में भारतीय ज्ञान परंपरा को पिछड़ा, अवैज्ञानिक और अप्रासंगिक सिद्ध करने का प्रयास किया गया। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक ज्ञान प्रणालियाँ हाशिए पर चली गईं और पाश्चात्य शिक्षा मॉडल को श्रेष्ठ माना जाने लगा। किंतु स्वतंत्रता के बाद और विशेष रूप से इक्कीसवीं सदी में, भारतीय ज्ञान परंपरा के पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया तेज़ हुई है। आज जब विश्व पर्यावरण संकट, नैतिक पतन, मानसिक तनाव और सामाजिक विघटन जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, तब भारतीय ज्ञान परंपरा की समग्र और संतुलित दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भारतीय ज्ञान परंपरा केवल भारत तक सीमित नहीं रही, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी स्वीकार की जा रही है। योग, ध्यान, आयुर्वेद और अहिंसा जैसे सिद्धांतों ने वैश्विक मानवता को वैकल्पिक जीवन-दृष्टि प्रदान की है। यह परंपरा सिखाती है कि विकास का अर्थ केवल आर्थिक वृद्धि नहीं, बल्कि मानसिक शांति, नैतिक मूल्यों और पर्यावरणीय संतुलन का संरक्षण भी है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए एक जीवंत मार्गदर्शक है। यह परंपरा हमें सिखाती है कि ज्ञान तब ही सार्थक है, जब वह व्यक्ति के आत्मिक विकास के साथ-साथ समाज और प्रकृति के कल्याण में भी योगदान दे। इसी व्यापक और मानवीय दृष्टिकोण के कारण भारतीय ज्ञान परंपरा आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी वह प्राचीन काल में थी।

2. भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा

भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा उस व्यापक, बहुआयामी और समग्र बौद्धिक विरासत को संदर्भित करती है, जो प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक भारतीय सभ्यता में निरंतर विकसित होती रही है। यह परंपरा केवल किसी एक विषय, धर्म या दर्शन तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसमें जीवन से जुड़े लगभग सभी क्षेत्रों—दर्शन, धर्म, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, खगोलशास्त्र, भाषा-विज्ञान, कला, साहित्य, योग, आयुर्वेद, नीतिशास्त्र और सामाजिक चिंतन—का समावेश मिलता है। भारतीय ज्ञान परंपरा की मूल भावना यह रही है कि ज्ञान जीवन से पृथक कोई अमूर्त तत्व नहीं, बल्कि जीवन को समझने, सुधारने और संतुलित करने का माध्यम है। भारतीय परंपरा में ज्ञान को *समग्रता* के सिद्धांत पर आधारित माना गया है। यहाँ भौतिक और आध्यात्मिक, लौकिक और पारलौकिक, व्यक्ति और समाज—इन सभी को अलग-अलग नहीं, बल्कि परस्पर संबद्ध रूप में देखा गया। इसी कारण भारतीय ज्ञान परंपरा में किसी भी विषय का अध्ययन एकांगी न होकर बहुआयामी रहा है। उदाहरण के लिए, आयुर्वेद केवल चिकित्सा पद्धति नहीं है, बल्कि जीवन-शैली, आहार, ऋतुचक्र, मानसिक संतुलन और नैतिक आचरण से भी जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार योग केवल शारीरिक व्यायाम न होकर मन, प्राण और चेतना के अनुशासन की प्रक्रिया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि यहाँ ज्ञान को *श्रुति, स्मृति, अनुभव* और *तर्क*—इन चारों के समन्वय से विकसित किया गया। श्रुति का आशय उस ज्ञान से है, जिसे दिव्य या अनुभूत सत्य के रूप में स्वीकार किया गया, जैसे वेद और उपनिषद। स्मृति में वह ज्ञान आता है, जो परंपरा, ग्रंथों और सामाजिक स्मरण के माध्यम से संरक्षित रहा, जैसे धर्मशास्त्र, पुराण और महाकाव्य। अनुभव ज्ञान का वह पक्ष है, जो प्रत्यक्ष जीवन-अनुभव, साधना और अभ्यास से प्राप्त होता है। वहीं तर्क ज्ञान की परीक्षा और परिष्कार का माध्यम है, जिससे अंधविश्वास के स्थान पर विवेक और विवेचन को महत्व मिला। भारतीय मनीषियों ने ज्ञान को केवल ग्रंथों में संचित करके स्थिर नहीं होने दिया, बल्कि उसे गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से जीवंत बनाए रखा। गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय ज्ञान परंपरा की आत्मा कही जा सकती है। इसमें ज्ञान का संप्रेषण केवल सूचना के आदान-प्रदान तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया थी, जिसमें गुरु अपने अनुभव, आचरण और चरित्र के माध्यम से शिष्य का मार्गदर्शन करता था। शिष्य से अपेक्षा की जाती थी कि वह प्रश्न करे, तर्क करे और स्वयं सत्य का साक्षात्कार करे। भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा में *प्रश्नाकुलता* और *संवाद* को विशेष महत्व दिया गया है। उपनिषदों में गुरु और शिष्य के बीच संवादात्मक शैली इसका प्रमुख उदाहरण है। यहाँ ज्ञान किसी एक पक्ष द्वारा थोपे जाने के बजाय प्रश्नों और उत्तरों के

माध्यम से विकसित होता है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में अनेक दार्शनिक धाराएँ एक साथ पनपीं। भिन्न-भिन्न मतों और विचारधाराओं का सह-अस्तित्व भारतीय बौद्धिक संस्कृति की उदारता को दर्शाता है। इस परंपरा में ज्ञान का उद्देश्य केवल बौद्धिक संतोष नहीं, बल्कि जीवन का कल्याण रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा में *ज्ञान, कर्म* और *भक्ति*—तीनों को समान रूप से महत्वपूर्ण माना गया। ज्ञान को आचरण से अलग नहीं किया गया। यदि ज्ञान व्यवहार में न उतरे, तो उसे अधूरा माना गया। इसी कारण नीतिशास्त्र, धर्म और सामाजिक कर्तव्यों को ज्ञान के साथ जोड़ा गया। सत्य, अहिंसा, करुणा, संयम और कर्तव्य जैसे मूल्य भारतीय ज्ञान परंपरा की आधारशिला रहे हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा प्रकृति के साथ सामंजस्य पर भी आधारित है। यहाँ प्रकृति को शोषण की वस्तु नहीं, बल्कि *माता* के रूप में देखा गया। पंचमहाभूतों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—का सिद्धांत इस बात को दर्शाता है कि मानव जीवन प्रकृति से गहराई से जुड़ा हुआ है। इस दृष्टिकोण ने भारतीय ज्ञान परंपरा को पर्यावरणीय संतुलन और सतत जीवन-शैली का समर्थक बनाया। औपनिवेशिक काल में भारतीय ज्ञान परंपरा की इस समग्र अवधारणा को संकुचित और अवैज्ञानिक कहकर हाशिए पर डालने का प्रयास किया गया। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के प्रभाव से ज्ञान को विषय-खंडों में बाँट दिया गया और उसके नैतिक व आध्यात्मिक पक्ष को गौण मान लिया गया। किंतु आधुनिक काल में यह स्पष्ट हो रहा है कि भारतीय ज्ञान परंपरा की समग्रता आज के जटिल वैश्विक संकटों—जैसे पर्यावरण विनाश, मानसिक तनाव, नैतिक पतन और सामाजिक असमानता—के समाधान में अत्यंत उपयोगी हो सकती है। आज भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा का पुनर्मूल्यांकन किया जा रहा है। शिक्षा, अनुसंधान और नीति-निर्माण में इसके सिद्धांतों को पुनः शामिल करने के प्रयास हो रहे हैं। यह परंपरा सिखाती है कि ज्ञान तभी सार्थक है, जब वह व्यक्ति के आत्मिक विकास के साथ-साथ समाज और प्रकृति के कल्याण में योगदान दे। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा एक समग्र जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करती है, जिसमें ज्ञान, नैतिकता, अनुभव और विवेक का संतुलित समन्वय दिखाई देता है। यही समन्वय इसे न केवल प्राचीन भारत की पहचान बनाता है, बल्कि आधुनिक और भविष्य के विश्व के लिए भी एक सार्थक और मार्गदर्शक ज्ञान परंपरा सिद्ध करता है।

3. वैदिक काल और ज्ञान की उत्पत्ति

भारतीय ज्ञान परंपरा की जड़ें वैदिक काल में गहराई से निहित हैं। वैदिक काल को भारतीय बौद्धिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चेतना की आधारशिला माना जाता है। इसी काल में ज्ञान की ऐसी समग्र अवधारणा विकसित हुई, जिसने आगे चलकर भारतीय दर्शन, धर्म, विज्ञान और सामाजिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया। वैदिक ज्ञान केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं था, बल्कि यह प्रकृति, ब्रह्मांड, मानव जीवन और सामाजिक व्यवस्था को समझने का एक सुव्यवस्थित प्रयास था। वैदिक काल में ज्ञान को दिव्य और मानवीय अनुभव के समन्वय के रूप में देखा गया। ऋषियों को *दृष्टा* कहा गया, अर्थात वे ज्ञान के रचयिता नहीं, बल्कि अनुभूत सत्य के द्रष्टा थे। यह धारणा भारतीय ज्ञान परंपरा की मौलिक विशेषता को दर्शाती है, जहाँ ज्ञान को मनुष्य की बौद्धिक कल्पना के बजाय ब्रह्मांडीय सत्य की अनुभूति माना गया। इसी कारण वैदिक ज्ञान को *श्रुति* कहा गया—ऐसा ज्ञान जो सुना गया, अनुभव किया गया और फिर मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संप्रेषित हुआ। वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—भारतीय ज्ञान परंपरा के आधार स्तंभ माने जाते हैं। इन ग्रंथों में केवल धार्मिक अनुष्ठानों या देवताओं की स्तुति का वर्णन नहीं है, बल्कि प्रकृति के नियमों, सामाजिक जीवन, नैतिक मूल्यों और मानव अस्तित्व से जुड़े गहन प्रश्नों पर भी चिंतन किया गया है। वेदों के माध्यम से मानव और ब्रह्मांड के बीच संबंध को समझने का प्रयास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ऋग्वेद को वैदिक साहित्य का सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। इसमें देवताओं की स्तुतियों के साथ-साथ प्रकृति के विभिन्न रूपों—अग्नि, वायु, सूर्य, इंद्र और सोम—के प्रति गहन श्रद्धा व्यक्त की गई है। ऋग्वेद के सूक्तों में *ऋत* की अवधारणा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। ऋत का अर्थ है ब्रह्मांडीय व्यवस्था या कॉस्मिक ऑर्डर, जिसके अंतर्गत प्रकृति और समाज दोनों संचालित होते हैं। यह विचार दर्शाता है कि वैदिक चिंतन में ब्रह्मांड अराजक नहीं, बल्कि सुव्यवस्थित और संतुलित है, और मानव का कर्तव्य इस व्यवस्था के अनुरूप आचरण करना है।

यजुर्वेद का मुख्य फोकस कर्मकांड और यज्ञीय परंपरा पर है। इसमें यज्ञ को केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक अनुशासन का माध्यम माना गया है। यज्ञ के माध्यम से व्यक्ति न केवल देवताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है, बल्कि समाज और प्रकृति के साथ अपने उत्तरदायित्व को भी स्वीकार करता है। यजुर्वेद यह सिखाता है कि कर्म शुद्ध हो, विधिपूर्वक हो और लोककल्याण की भावना से प्रेरित हो। इस प्रकार, यह ग्रंथ कर्म और नैतिकता के बीच गहरा संबंध स्थापित करता है। सामवेद वैदिक ज्ञान परंपरा का सौंदर्यात्मक और सांगीतिक पक्ष प्रस्तुत करता है। इसे भारतीय संगीत की आधारशिला

माना जाता है। सामवेद में ऋग्वैदिक मंत्रों को संगीतमय रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में सौंदर्यबोध और कला को भी ज्ञान का महत्वपूर्ण अंग माना गया। संगीत को केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि साधना और चेतना के उत्थान का साधन समझा गया। यह दृष्टि भारतीय कला और संगीत परंपरा की गहरी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को दर्शाती है। अथर्ववेद वैदिक काल के लोकजीवन का सबसे सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। इसमें रोग, चिकित्सा, गृहस्थ जीवन, सामाजिक समस्याएँ, भय, आशा और आकांक्षाओं का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद यह दर्शाता है कि वैदिक ज्ञान परंपरा केवल यज्ञ और देवताओं तक सीमित नहीं थी, बल्कि सामान्य मानव के दैनिक जीवन से भी गहराई से जुड़ी हुई थी। इसमें चिकित्सा संबंधी मंत्र और उपचार पद्धतियाँ आगे चलकर आयुर्वेद के विकास का आधार बनीं।

वैदिक काल में ज्ञान की उत्पत्ति केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह एक जीवंत सामाजिक प्रक्रिया थी। आश्रमों और सभाओं में संवाद, शास्त्रार्थ और चिंतन के माध्यम से ज्ञान का विकास हुआ। गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से ज्ञान का मौखिक संप्रेषण हुआ, जिससे स्मरण शक्ति, अनुशासन और एकाग्रता को विशेष महत्व मिला। यह प्रणाली ज्ञान को स्थिर न रखकर सतत प्रवाहमान बनाए रखती थी। वैदिक ज्ञान परंपरा की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता इसका समग्र दृष्टिकोण है। यहाँ आध्यात्मिक, प्राकृतिक और सामाजिक तत्वों को अलग-अलग नहीं देखा गया। मानव जीवन को प्रकृति और ब्रह्मांड के साथ गहराई से जुड़ा माना गया। यही कारण है कि वैदिक चिंतन में पर्यावरण के प्रति सम्मान और संतुलन की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। नदियों, पर्वतों, वनस्पतियों और पशुओं को पवित्र मानना इसी दृष्टिकोण का परिणाम है।इस प्रकार, वैदिक काल और ज्ञान की उत्पत्ति भारतीय ज्ञान परंपरा की नींव को समझने की कुंजी है। वेदों में निहित विचारों ने आगे चलकर उपनिषदिक दर्शन, शास्त्रीय दर्शन, विज्ञान और सामाजिक चिंतन को दिशा प्रदान की। वैदिक ज्ञान परंपरा केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि एक ऐसी जीवंत धारा है, जिसने भारतीय सभ्यता को उसकी विशिष्ट पहचान दी और आज भी मानवता को संतुलित, नैतिक और समन्वयपूर्ण जीवन की प्रेरणा देती है।

4. उपनिषदिक चिंतन और दार्शनिक विकास

वैदिक काल में जहाँ ज्ञान की अभिव्यक्ति मुख्यतः यज्ञ, कर्मकांड और देव-स्तुति के माध्यम से हुई, वहीं आगे चलकर भारतीय ज्ञान परंपरा का दार्शनिक उत्कर्ष उपनिषद में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उपनिषदिक चिंतन को वैदिक परंपरा की पराकाष्ठा माना जाता है, क्योंकि यहाँ ज्ञान का केंद्र बाह्य अनुष्ठानों से हटकर आंतरिक आत्मचिंतन और अनुभूति पर आधारित हो जाता है। उपनिषदों में मानव जीवन के सबसे गूढ़ और मौलिक प्रश्नों—मैं कौन हूँ, यह संसार क्या है, सत्य क्या है और मुक्ति का मार्ग कौन-सा है—पर गहन दार्शनिक विमर्श मिलता है। उपनिषदों का मूल उद्देश्य कर्मकांड की जटिलताओं से ऊपर उठकर सत्य की खोज करना था। वैदिक युग में यज्ञ और अनुष्ठानों को अत्यधिक महत्व दिया गया था, परंतु समय के साथ यह अनुभव होने लगा कि केवल बाह्य कर्मों से अंतिम सत्य की प्राप्ति संभव नहीं है। इसी बोध से उपनिषदिक चिंतन का उदय हुआ, जिसने ज्ञान को अंतर्मुखी बनाया। यहाँ प्रश्न यह नहीं रह गया कि यज्ञ कैसे किया जाए, बल्कि यह हो गया कि यज्ञ करने वाला कौन है और उसके अस्तित्व का मूल क्या है। उपनिषदों का केंद्रीय विषय *ब्रह्म* और *आत्मा* की अवधारणा है। ब्रह्म को परम, अनंत और सर्वव्यापी सत्य के रूप में परिभाषित किया गया है, जबकि आत्मा को उसी ब्रह्म का अंश या स्वरूप माना गया है। उपनिषदों का यह क्रांतिकारी विचार कि आत्मा और ब्रह्म भिन्न नहीं हैं, भारतीय दर्शन की सबसे महान उपलब्धियों में से एक है। "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ही ब्रह्म हूँ), "तत्त्वमसि" (वह तू ही है) और "प्रज्ञानं ब्रह्म" (चेतना ही ब्रह्म है) जैसे महावाक्य इस अद्वैत दृष्टि को सशक्त रूप से व्यक्त करते हैं। ये महावाक्य न केवल दार्शनिक घोषणाएँ हैं, बल्कि आत्मानुभूति की दिशा में संकेतक भी हैं।

उपनिषदिक चिंतन में *माया* की अवधारणा भी महत्वपूर्ण है। माया को उस शक्ति के रूप में समझाया गया है, जो ब्रह्म की एकता को अनेकता के रूप में प्रकट करती है। संसार को मिथ्या नहीं, बल्कि अस्थायी और परिवर्तनशील माना गया। इस दृष्टि से उपनिषद मानव को यह सिखाते हैं कि दुःख और बंधन का कारण बाहरी संसार नहीं, बल्कि उसकी अज्ञानजनित आसक्ति है। जब व्यक्ति इस अज्ञान से मुक्त होता है, तब वह मोक्ष की अवस्था को प्राप्त करता है। मोक्ष उपनिषदिक दर्शन का परम लक्ष्य है। यह मोक्ष केवल मृत्यु के बाद की अवस्था नहीं, बल्कि जीवन में ही प्राप्त होने वाली चेतना की स्थिति है, जिसे *जीवनमुक्ति* कहा गया है। उपनिषद यह स्पष्ट करते हैं कि मोक्ष किसी बाहरी कृपा या कर्मकांड से नहीं, बल्कि आत्मज्ञान से प्राप्त होता है। यही कारण है कि उपनिषदों में ज्ञान को सर्वोच्च साधन माना गया है—ऐसा ज्ञान, जो आत्मा और ब्रह्म की एकता का साक्षात्कार कराए। उपनिषदिक चिंतन की एक विशिष्ट विशेषता इसकी संवादात्मक शैली है। यहाँ गुरु और शिष्य के बीच प्रश्नोत्तर के माध्यम से ज्ञान का संप्रेषण होता है। शिष्य जिज्ञासा करता है, संदेह प्रकट करता है और गुरु उसे अनुभव की ओर प्रेरित करता है। यह शैली

भारतीय ज्ञान परंपरा की बौद्धिक स्वतंत्रता और उदारता को दर्शाती है। उपनिषदों में यह स्पष्ट संदेश मिलता है कि सत्य को आँख मूँदकर स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उसे समझा, परखा और अनुभव किया जाना चाहिए। दार्शनिक विकास की दृष्टि से उपनिषदों ने भारतीय दर्शन की आगे की सभी प्रमुख धाराओं को प्रभावित किया। वेदांत दर्शन की नींव उपनिषदों पर ही आधारित है। शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत, रामानुज के विशिष्टाद्वैत और माध्वाचार्य के द्वैत दर्शन—सभी ने उपनिषदों को अपने दार्शनिक आधार के रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार, उपनिषदिक चिंतन भारतीय दर्शन की रीढ़ बन गया।

उपनिषदों का प्रभाव केवल भारतीय दर्शन तक सीमित नहीं रहा। इनके विचारों ने विश्व के अनेक दार्शनिक और आध्यात्मिक आंदोलनों को भी प्रभावित किया। आत्मा और चेतना की अवधारणा, आंतरिक शांति पर बल और भौतिक आसक्तियों से मुक्ति का विचार आधुनिक वैश्विक चिंतन में भी दिखाई देता है। यही कारण है कि उपनिषदों को सार्वभौमिक दर्शन का दर्जा दिया जाता है। उपनिषदिक चिंतन का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष इसकी नैतिक दृष्टि है। जब आत्मा और ब्रह्म की एकता को स्वीकार किया जाता है, तब समस्त मानवता में एकत्व का बोध उत्पन्न होता है। इससे करुणा, अहिंसा और सह-अस्तित्व जैसे मूल्य स्वाभाविक रूप से विकसित होते हैं। इस प्रकार उपनिषदिक दर्शन केवल आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक समरसता की भी आधारशिला रखता है। आधुनिक संदर्भ में उपनिषदिक चिंतन की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। आज का मानव भौतिक प्रगति के बावजूद मानसिक तनाव, असंतोष और अस्तित्वगत संकट से जूझ रहा है। उपनिषदों का संदेश—अपने भीतर झाँकने, आत्मा को जानने और बाहरी भोगों से परे सत्य की खोज करने का—आधुनिक जीवन को संतुलन और अर्थ प्रदान कर सकता है। इस प्रकार, वैदिक कर्मकांड से आगे बढ़कर उपनिषदिक चिंतन भारतीय ज्ञान परंपरा को दार्शनिक गहराई और सार्वभौमिकता प्रदान करता है। यह चिंतन सिखाता है कि सत्य की खोज बाह्य अनुष्ठानों में नहीं, बल्कि आंतरिक आत्मचिंतन और अनुभूति में निहित है। इसी कारण उपनिषद न केवल भारतीय दर्शन का शिखर हैं, बल्कि मानव बौद्धिक इतिहास की एक अमूल्य धरोहर भी हैं।

5. दर्शन की विविध धाराएँ

भारतीय ज्ञान परंपरा की एक अत्यंत विशिष्ट और गौरवपूर्ण विशेषता इसकी दार्शनिक विविधता है। यहाँ दर्शन किसी एक मत, सिद्धांत या विचारधारा तक सीमित नहीं रहा, बल्कि समय के साथ अनेक दार्शनिक धाराएँ विकसित हुईं, जिन्होंने सत्य, ज्ञान, आत्मा, संसार और मोक्ष जैसे मूलभूत प्रश्नों पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए। भारतीय दर्शन को परंपरागत रूप से *आस्तिक* और *नास्तिक*—इन दो व्यापक वर्गों में विभाजित किया गया है। यह विभाजन ईश्वर-विश्वास के आधार पर नहीं, बल्कि वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार करने या न करने के आधार पर किया गया है।

5.1 आस्तिक दर्शन की परंपराएँ -आस्तिक दर्शन वे हैं, जो वेदों को प्रमाणिक मानते हैं। इनमें छह प्रमुख दर्शन शामिल हैं—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत। इन दर्शनों को *षड्दर्शन* कहा जाता है। प्रत्येक दर्शन की अपनी स्वतंत्र दार्शनिक पद्धति, तर्क प्रणाली और लक्ष्य है, किंतु सभी का अंतिम उद्देश्य सत्य की खोज और मानव दुःख से मुक्ति रहा है। न्याय दर्शन को भारतीय तर्कशास्त्र की आधारशिला माना जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य सही ज्ञान (*प्रमा*) की प्राप्ति है। न्याय दर्शन ने प्रमाणों—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द—की व्यवस्थित व्याख्या की और तर्क-वितर्क की एक सशक्त परंपरा विकसित की। यह दर्शन इस बात पर बल देता है कि अज्ञान ही दुःख का मूल कारण है और तर्कपूर्ण ज्ञान के माध्यम से ही मुक्ति संभव है। वैशेषिक दर्शन पदार्थ और उसके गुणों के विश्लेषण पर केंद्रित है। इस दर्शन में संसार को द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय—इन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। वैशेषिक दर्शन का महत्व इस बात में है कि यह भारतीय दर्शन में वैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक दृष्टि को सुदृढ़ करता है। इसमें परमाणुवाद की अवधारणा भी मिलती है, जो प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक चिंतन का प्रमाण है। सांख्य दर्शन भारतीय दर्शन की सबसे प्राचीन और व्यवस्थित दार्शनिक प्रणालियों में से एक है। यह दर्शन द्वैतवाद पर आधारित है, जिसमें *पुरुष* (चेतना) और *प्रकृति* (भौतिक तत्व) को स्वतंत्र और शाश्वत माना गया है। सांख्य दर्शन में संसार के विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण 24 तत्त्वों के माध्यम से किया गया है। इसका उद्देश्य पुरुष को प्रकृति के बंधन से मुक्त करना है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। योग दर्शन सांख्य दर्शन का व्यावहारिक पक्ष माना जाता है। यह दर्शन मन, शरीर और चेतना के अनुशासन पर बल देता है। योग के अष्टांग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—मानव को आत्मसंयम और आत्मबोध की ओर ले जाते हैं। योग दर्शन यह सिखाता है कि केवल बौद्धिक ज्ञान पर्याप्त नहीं, बल्कि साधना और अभ्यास के माध्यम से ही सत्य का अनुभव संभव है। मीमांसा दर्शन मुख्यतः वेदों के कर्मकांड पक्ष की व्याख्या करता है। यह दर्शन कर्म और धर्म की प्रधानता पर बल देता है। मीमांसा के अनुसार, यज्ञ और वैदिक कर्मों का विधिपूर्वक पालन ही जीवन

के कल्याण का मार्ग है। इस दर्शन ने वेदों की व्याख्या की एक सुदृढ़ पद्धति विकसित की, जिसने भारतीय बौद्धिक परंपरा को गहराई प्रदान की। वेदांत दर्शन उपनिषदों पर आधारित है और इसे भारतीय दर्शन का शिखर माना जाता है। वेदांत में ब्रह्म और आत्मा के संबंध पर गहन चिंतन किया गया है। अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत—वेदांत की विभिन्न धाराएँ—भारतीय दार्शनिक विविधता का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। वेदांत दर्शन का मुख्य उद्देश्य आत्मज्ञान के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति है।

5.2 नास्तिक दर्शन की परंपराएँ -नास्तिक दर्शन वे हैं, जो वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करते, किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि वे दर्शनहीन या अवैज्ञानिक हैं। बौद्ध, जैन और चार्वाक दर्शन नास्तिक परंपरा के प्रमुख उदाहरण हैं, जिन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा को व्यावहारिक, नैतिक और तर्कपूर्ण दृष्टि प्रदान की। बौद्ध दर्शन दुःख की समस्या से आरंभ होता है। इसमें चार आर्य सत्य और अष्टांगिक मार्ग के माध्यम से दुःख-निवारण का मार्ग बताया गया है। बौद्ध दर्शन आत्मा की स्थायित्व को नकारता है और *अनात्मवाद* तथा *क्षणिकवाद* की अवधारणाएँ प्रस्तुत करता है। करुणा, अहिंसा और मध्यम मार्ग बौद्ध दर्शन के केंद्रीय सिद्धांत हैं। जैन दर्शन में अहिंसा, अनेकांतवाद और अपरिग्रह को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। अनेकांतवाद यह सिखाता है कि सत्य के अनेक पक्ष हो सकते हैं और किसी एक दृष्टिकोण को पूर्ण सत्य नहीं माना जा सकता। यह विचार भारतीय बौद्धिक उदारता का उत्कृष्ट उदाहरण है। जैन दर्शन आत्मसंयम और नैतिक जीवन पर विशेष बल देता है। चार्वाक दर्शन भारतीय दर्शन की सबसे भौतिकवादी धारा मानी जाती है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण को ही सत्य का आधार मानता है और आत्मा, परलोक तथा मोक्ष जैसी अवधारणाओं को अस्वीकार करता है। यद्यपि चार्वाक दर्शन अल्पकालिक सुख पर बल देता है, फिर भी इसकी तर्कशीलता और आलोचनात्मक दृष्टि भारतीय दर्शन में बौद्धिक संतुलन बनाए रखने में सहायक रही है।

5.3 दार्शनिक विविधता और शास्त्रार्थ की परंपरा -भारतीय ज्ञान परंपरा में दर्शन की यह विविधता किसी वैचारिक अराजकता का नहीं, बल्कि बौद्धिक उदारता और संवाद की संस्कृति का परिणाम है। यहाँ विचारों का दमन नहीं किया गया, बल्कि शास्त्रार्थ और विमर्श के माध्यम से सत्य की खोज की गई। भिन्न-भिन्न दर्शनों के बीच संवाद और आलोचना ने भारतीय दर्शन को और अधिक समृद्ध बनाया। इस प्रकार, दर्शन की विविध धाराएँ भारतीय ज्ञान परंपरा की जीवंतता और गहराई को दर्शाती हैं। यह परंपरा सिखाती है कि सत्य की खोज एकांगी नहीं, बल्कि बहुआयामी होती है। विचारों की यह बहुलता ही भारतीय दर्शन को न केवल प्राचीन काल में, बल्कि आज के बौद्धिक और वैश्विक संदर्भ में भी प्रासंगिक बनाती है।

6. बौद्ध और जैन ज्ञान परंपरा

भारतीय ज्ञान परंपरा में बौद्ध और जैन परंपराओं का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन दोनों परंपराओं ने वैदिक और उपनिषदिक चिंतन की पृष्ठभूमि में विकसित होकर भारतीय दर्शन को एक नया नैतिक, सामाजिक और व्यावहारिक आयाम प्रदान किया। गौतम बुद्ध और महावीर ने अपने-अपने दर्शन के माध्यम से मानव जीवन की पीड़ा, नैतिक संकट और सामाजिक असमानताओं का गहन विश्लेषण किया तथा करुणा, अहिंसा और आत्मसंयम पर आधारित जीवन-दृष्टि प्रस्तुत की। इन दोनों ज्ञान परंपराओं का उद्देश्य केवल दार्शनिक विमर्श नहीं था, बल्कि मानव जीवन को दुःख, हिंसा और अज्ञान से मुक्त करने का मार्ग दिखाना था।

6.1 बौद्ध ज्ञान परंपरा: दुःख से मुक्ति का मार्ग -बौद्ध ज्ञान परंपरा का केंद्र मानव दुःख की समस्या है। गौतम बुद्ध का जीवन स्वयं त्याग, करुणा और सत्य की खोज का प्रतीक है। उन्होंने राजसी वैभव का परित्याग कर यह अनुभव किया कि संसार का मूल स्वरूप दुःखमय है। बौद्ध दर्शन का आरंभ *चार आर्य सत्यों* से होता है—दुःख, दुःख का कारण, दुःख का निरोध और दुःख निरोध का मार्ग। यह दृष्टि अत्यंत व्यावहारिक है, क्योंकि यह जीवन की वास्तविक समस्याओं से सीधे जुड़ी हुई है। बौद्ध दर्शन के अनुसार दुःख का मूल कारण *तृष्णा* है—अर्थात् भोग, सत्ता और अस्तित्व के प्रति आसक्ति। यह तृष्णा ही मानव को बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्र में बाँधती है। बुद्ध ने यह स्पष्ट किया कि दुःख से मुक्ति किसी ईश्वर-कृपा या जटिल कर्मकांड से नहीं, बल्कि सही दृष्टि और सही आचरण से संभव है। इसी उद्देश्य से उन्होंने *अष्टांगिक मार्ग* का प्रतिपादन किया, जिसमें सम्यक दृष्टि, संकल्प, वाणी, कर्म, आजीविका, प्रयास, स्मृति और समाधि शामिल हैं। बौद्ध ज्ञान परंपरा की एक प्रमुख विशेषता *मध्यम मार्ग* की अवधारणा है। बुद्ध ने न तो अत्यधिक भोग-विलास को उचित माना और न ही कठोर तपस्या को। उन्होंने संतुलित जीवन-शैली को ज्ञान और मुक्ति का मार्ग बताया। यह दृष्टि भारतीय ज्ञान परंपरा में व्यावहारिकता और संतुलन का उत्कृष्ट उदाहरण है। दार्शनिक स्तर पर बौद्ध परंपरा ने *अनात्मवाद* और *क्षणिकवाद* जैसी अवधारणाएँ प्रस्तुत कीं। अनात्मवाद के अनुसार कोई स्थायी आत्मा नहीं है, बल्कि मानव अस्तित्व पंचस्कंधों का अस्थायी संयोजन है। क्षणिकवाद यह सिखाता है कि संसार का प्रत्येक तत्व निरंतर

परिवर्तनशील है। इन विचारों ने भारतीय दर्शन में स्थायित्व और परिवर्तन पर गहन विमर्श को जन्म दिया। नैतिक दृष्टि से बौद्ध ज्ञान परंपरा करुणा और अहिंसा पर आधारित है। बुद्ध के अनुसार सभी प्राणी दुःख से मुक्त होना चाहते हैं, इसलिए करुणा केवल नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि जीवन का आवश्यक सिद्धांत है। आज के वैश्विक संदर्भ में, जहाँ हिंसा, युद्ध और असहिष्णुता बढ़ रही है, बौद्ध करुणा-दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है।

6.2 जैन ज्ञान परंपरा: अहिंसा और अनेकांत का दर्शन -जैन ज्ञान परंपरा भारतीय दर्शन की एक अन्य महत्वपूर्ण धारा है, जिसने नैतिकता और आत्मसंयम को जीवन का केंद्र बनाया। महावीर ने जैन दर्शन को व्यवस्थित रूप प्रदान किया और इसे सामाजिक जीवन से गहराई से जोड़ा। जैन दर्शन का मूल सिद्धांत *अहिंसा* है, जिसे केवल शारीरिक हिंसा से बचाव तक सीमित नहीं किया गया, बल्कि विचार, वाणी और कर्म—तीनों स्तरों पर लागू किया गया। जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक जीव में आत्मा विद्यमान है और किसी भी प्रकार की हिंसा आत्मिक पतन का कारण बनती है। इस दृष्टि से जैन अहिंसा केवल धार्मिक नियम नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांत है। आधुनिक पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में यह विचार अत्यंत प्रासंगिक है, क्योंकि यह मनुष्य और प्रकृति के बीच संवेदनशील और जिम्मेदार संबंध स्थापित करता है। जैन ज्ञान परंपरा का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत *अनेकांतवाद* है। अनेकांतवाद यह सिखाता है कि सत्य के अनेक पक्ष होते हैं और किसी एक दृष्टिकोण को पूर्ण सत्य नहीं माना जा सकता। यह विचार बौद्धिक सहिष्णुता और संवाद की संस्कृति को प्रोत्साहित करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में यह सिद्धांत विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह मतभेदों के बावजूद सह-अस्तित्व का मार्ग दिखाता है। *अपरिग्रह* जैन दर्शन का तीसरा प्रमुख सिद्धांत है, जिसका अर्थ है—संग्रह से मुक्ति। जैन परंपरा में भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति को दुःख और बंधन का कारण माना गया है। अपरिग्रह का सिद्धांत आज के उपभोक्तावादी समाज में संतुलन और संयम की आवश्यकता को रेखांकित करता है। यह न केवल व्यक्तिगत नैतिकता, बल्कि सामाजिक और पर्यावरणीय न्याय की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

6.3 बौद्ध और जैन परंपराओं का भारतीय ज्ञान परंपरा में योगदान -बौद्ध और जैन ज्ञान परंपराओं ने भारतीय दर्शन को केवल आध्यात्मिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक आधार भी प्रदान किया। इन परंपराओं ने कर्मकांड और जातिगत कठोरताओं की आलोचना की तथा समानता, करुणा और नैतिक आचरण पर बल दिया। शिक्षा, संघ व्यवस्था और मठ प्रणाली के माध्यम से बौद्ध और जैन परंपराओं ने ज्ञान के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन दोनों परंपराओं का प्रभाव भारत की सीमाओं से बाहर भी व्यापक रूप से फैला। बौद्ध दर्शन एशिया के अनेक देशों में पहुँचा और वहाँ की संस्कृति को गहराई से प्रभावित किया। जैन दर्शन ने अहिंसा और अपरिग्रह के माध्यम से वैश्विक नैतिक चिंतन को समृद्ध किया।

6.4 समकालीन प्रासंगिकता -आज के युग में, जब मानवता हिंसा, पर्यावरण विनाश और नैतिक संकट से जूझ रही है, बौद्ध और जैन ज्ञान परंपराएँ संतुलित और करुणामय जीवन की दिशा प्रदान करती हैं। करुणा, अहिंसा, संयम और सहिष्णुता जैसे मूल्य आधुनिक विश्व की जटिल समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकते हैं। इस प्रकार, बौद्ध और जैन ज्ञान परंपराएँ भारतीय ज्ञान परंपरा को नैतिक गहराई, व्यावहारिक दृष्टि और सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से समृद्ध करती हैं। ये परंपराएँ यह सिखाती हैं कि ज्ञान का वास्तविक उद्देश्य केवल बौद्धिक उपलब्धि नहीं, बल्कि मानव और समस्त जीवों के कल्याण में निहित है।

7. भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान

भारतीय ज्ञान परंपरा को प्रायः केवल आध्यात्मिक, धार्मिक या दार्शनिक दृष्टि से देखा जाता है, किंतु यह धारणा अधूरी और एकांगी है। वास्तव में भारतीय ज्ञान परंपरा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अत्यंत सशक्त, व्यवस्थित और व्यावहारिक रहा है। प्राचीन भारत में विज्ञान को जीवन से अलग कोई अमूर्त विषय नहीं माना गया, बल्कि उसे मानव अनुभव, प्रकृति के अवलोकन और तर्कपूर्ण चिंतन से जोड़कर विकसित किया गया। इसी कारण भारतीय विज्ञान परंपरा गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, धातु-विज्ञान, स्थापत्य और पर्यावरणीय ज्ञान जैसे अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्रस्तुत करती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान का मूल उद्देश्य प्रकृति को जीतना या उस पर प्रभुत्व स्थापित करना नहीं था, बल्कि प्रकृति के नियमों को समझकर मानव जीवन को संतुलित, स्वस्थ और सार्थक बनाना था। यही कारण है कि यहाँ वैज्ञानिक चिंतन नैतिकता और उत्तरदायित्व से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। ज्ञान को केवल बौद्धिक उपलब्धि नहीं, बल्कि सामाजिक और मानवीय कल्याण का साधन माना गया।

7.1 गणितीय विज्ञान और संख्यात्मक क्रांति -भारतीय ज्ञान परंपरा का वैज्ञानिक योगदान विशेष रूप से गणित के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। शून्य की अवधारणा और दशमलव संख्या प्रणाली भारतीय गणित की सबसे महान उपलब्धियों में मानी जाती

हैं। शून्य केवल एक संख्या नहीं, बल्कि एक दार्शनिक और वैज्ञानिक अवधारणा भी है, जिसने गणना की पूरी पद्धति को सरल और प्रभावी बना दिया। दशमलव प्रणाली ने जटिल गणनाओं को संभव बनाया और आगे चलकर वैश्विक गणितीय विकास की नींव रखी। प्राचीन भारतीय गणितज्ञों ने बीजगणित, ज्यामिति और त्रिकोणमिति के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। समीकरणों के समाधान, वर्गमूल और घनमूल की विधियाँ, तथा कोणों और त्रिभुजों का अध्ययन इस बात का प्रमाण है कि भारतीय गणित केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक आवश्यकताओं से भी जुड़ा हुआ था। कृषि, वास्तुकला, खगोलशास्त्र और व्यापार—सभी क्षेत्रों में गणितीय ज्ञान का उपयोग किया गया।

7.2 खगोलशास्त्र और ब्रह्मांडीय चिंतन -भारतीय ज्ञान परंपरा में खगोलशास्त्र का विकास अत्यंत उन्नत स्तर पर हुआ। आकाशीय पिंडों की गति, ग्रहों की स्थिति, ग्रहणों की गणना और कालगणना—इन सभी विषयों पर गहन अध्ययन किया गया। इस क्षेत्र में आर्यभट का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने पृथ्वी के घूर्णन का सिद्धांत प्रस्तुत किया और यह बताया कि दिन-रात का कारण पृथ्वी की गति है, न कि सूर्य की परिक्रमा। आर्यभट ने ग्रहों की गति और ग्रहणों की वैज्ञानिक व्याख्या की, जो उस समय के प्रचलित अंधविश्वासों से अलग थी। उनके ग्रंथों में गणित और खगोलशास्त्र का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में खगोलशास्त्र केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए नहीं, बल्कि वैज्ञानिक जिज्ञासा और तर्क के आधार पर विकसित हुआ था। भारतीय पंचांग प्रणाली भी वैज्ञानिक खगोलशास्त्र का परिणाम है। ऋतुचक्र, कृषि काल और पर्व-त्योहारों की गणना खगोलीय अवलोकनों पर आधारित थी। यह ज्ञान प्रकृति और मानव जीवन के बीच गहरे संबंध को दर्शाता है।

7.3 चिकित्सा विज्ञान: आयुर्वेद की वैज्ञानिकता-भारतीय ज्ञान परंपरा में चिकित्सा विज्ञान का सबसे सशक्त रूप आयुर्वेद में दिखाई देता है। आयुर्वेद को केवल औषधि-प्रणाली नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन-विज्ञान माना गया है। इसमें शरीर, मन और आत्मा—तीनों के संतुलन पर बल दिया गया है। आयुर्वेद का विकास अनुभव, निरीक्षण और प्रयोग के आधार पर हुआ, जो इसकी वैज्ञानिक प्रकृति को सिद्ध करता है। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में सुश्रुत और चरक के योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। सुश्रुत को शल्य चिकित्सा का जनक माना जाता है। उनके ग्रंथों में शल्य क्रिया, उपकरणों, घावों के उपचार और शरीर रचना का विस्तृत वर्णन मिलता है। यह दर्शाता है कि प्राचीन भारत में शल्य चिकित्सा एक विकसित और व्यावहारिक विज्ञान थी। चरक ने आयुर्वेद को व्यवस्थित रूप प्रदान किया और रोगों के कारण, निदान और उपचार की वैज्ञानिक व्याख्या की। उन्होंने आहार, जीवन-शैली और मानसिक स्थिति को स्वास्थ्य से जोड़कर देखा। यह दृष्टि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में *समग्र स्वास्थ्य* (Holistic Health) की अवधारणा से मेल खाती है।

7.4 प्रयोग, तर्क और अनुभव की परंपरा-भारतीय ज्ञान परंपरा की वैज्ञानिकता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि यहाँ ज्ञान को अनुभव, प्रयोग और तर्क के आधार पर स्वीकार किया गया। किसी भी सिद्धांत को अंतिम सत्य मानने से पहले उसकी परीक्षा की जाती थी। शास्त्रार्थ और विमर्श के माध्यम से विचारों को परिष्कृत किया जाता था। यह परंपरा वैज्ञानिक पद्धति के मूल तत्वों—अवलोकन, परिकल्पना और परीक्षण—से मेल खाती है। भारतीय विज्ञान परंपरा में प्रकृति के साथ सामंजस्य का भाव भी निहित है। औषधियों का निर्माण वनस्पतियों के गहन अध्ययन पर आधारित था। धातु-विज्ञान और स्थापत्य में भी वैज्ञानिक गणनाओं और प्रयोगों का उपयोग किया गया। प्राचीन मंदिरों और स्थापत्य संरचनाओं में ज्यामिति, ध्वनिकी और खगोलशास्त्र का प्रयोग इस वैज्ञानिक दृष्टि का प्रमाण है।

7.5 आधुनिक संदर्भ में भारतीय वैज्ञानिक ज्ञान-औपनिवेशिक काल में भारतीय ज्ञान परंपरा के वैज्ञानिक पक्ष को कम करके आँका गया और उसे अवैज्ञानिक कहकर हाशिए पर डाल दिया गया। किंतु आधुनिक शोध और इतिहासलेखन ने यह स्पष्ट किया है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान की एक सुदृढ़ और मौलिक परंपरा रही है। आज शून्य, दशमलव प्रणाली, आयुर्वेद और योग को वैश्विक स्तर पर स्वीकार किया जा रहा है। आधुनिक विश्व में जब पर्यावरणीय संकट, जीवन-शैली से जुड़ी बीमारियाँ और मानसिक तनाव बढ़ रहे हैं, तब भारतीय ज्ञान परंपरा का वैज्ञानिक और समग्र दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। यह परंपरा सिखाती है कि विज्ञान और नैतिकता, ज्ञान और करुणा—इनका संतुलन ही सतत विकास का मार्ग है।

9. शिक्षा व्यवस्था और गुरुकुल परंपरा

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा को केवल रोजगार या आजीविका का साधन नहीं माना गया, बल्कि इसे *जीवन निर्माण* की एक पवित्र और सतत प्रक्रिया के रूप में देखा गया। यहाँ शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि व्यक्ति के चरित्र, नैतिकता, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व का समग्र निर्माण रहा है। इसी दृष्टि के कारण भारतीय शिक्षा परंपरा में ज्ञान और जीवन, अध्ययन और आचरण, सिद्धांत और व्यवहार—इन सभी के बीच गहरा संबंध स्थापित हुआ। गुरुकुल परंपरा इस समग्र शैक्षिक दृष्टि का सबसे सशक्त और जीवंत उदाहरण है।

9.1 गुरुकुल परंपरा की मूल अवधारणा=गुरुकुल प्रणाली भारतीय शिक्षा व्यवस्था की आधारशिला मानी जाती है। *गुरुकुल* का अर्थ है—गुरु का कुल या आश्रम, जहाँ शिष्य गुरु के सान्निध्य में रहकर शिक्षा ग्रहण करता था। इस प्रणाली में शिक्षा औपचारिक कक्षा-कक्षों तक सीमित नहीं थी, बल्कि दैनिक जीवन के प्रत्येक अनुभव से जुड़ी हुई थी। शिष्य गुरु के साथ रहकर न केवल शास्त्रों का अध्ययन करता था, बल्कि सेवा, अनुशासन, आत्मसंयम और सह-अस्तित्व का भी अभ्यास करता था। गुरुकुल परंपरा में गुरु और शिष्य के बीच संबंध केवल शिक्षक और विद्यार्थी का नहीं, बल्कि मार्गदर्शक और साधक का होता था। गुरु का दायित्व था कि वह शिष्य को केवल विद्वान ही नहीं, बल्कि एक सुसंस्कृत और उत्तरदायी नागरिक बनाए। वहीं शिष्य से अपेक्षा की जाती थी कि वह विनम्रता, श्रद्धा और जिज्ञासा के साथ ज्ञान अर्जित करे।

9.2 शिक्षा का समग्र स्वरूप -भारतीय शिक्षा परंपरा में पाठ्यक्रम अत्यंत व्यापक और संतुलित होता था। इसमें वेद, उपनिषद, दर्शन, व्याकरण, गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्विद्या, संगीत, नाट्य और नीति-शास्त्र जैसे विविध विषय शामिल थे। यह इस बात का प्रमाण है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल किसी एक क्षेत्र में दक्षता प्राप्त करना नहीं, बल्कि बहुआयामी व्यक्तित्व का विकास करना था। शिक्षा में नैतिक मूल्यों को विशेष स्थान दिया गया। सत्य, अहिंसा, संयम, करुणा और कर्तव्यबोध जैसे मूल्य शैक्षणिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग थे। विद्यार्थी को यह सिखाया जाता था कि ज्ञान का उपयोग केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए।

9.3 अनुशासन और श्रम का महत्व -गुरुकुल परंपरा में अनुशासन को शिक्षा का अनिवार्य तत्व माना गया। ब्रह्मचर्य आश्रम के अंतर्गत विद्यार्थी को आत्मसंयम, नियमित दिनचर्या और श्रम का महत्व सिखाया जाता था। आश्रम में शिष्य स्वयं जल लाता, लकड़ी एकत्र करता और दैनिक कार्यों में भाग लेता था। इससे उसमें आत्मनिर्भरता, विनम्रता और श्रम के प्रति सम्मान की भावना विकसित होती थी। यह शिक्षा प्रणाली यह स्पष्ट करती है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में श्रम और ज्ञान को अलग-अलग नहीं माना गया। शारीरिक श्रम और बौद्धिक चिंतन—दोनों को समान रूप से महत्वपूर्ण समझा गया।

9.4 संवाद और शास्त्रार्थ की परंपरा -भारतीय शिक्षा व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता संवाद और शास्त्रार्थ की परंपरा थी। शिक्षा केवल एकतरफा उपदेश नहीं थी, बल्कि प्रश्नोत्तर, विमर्श और तर्क के माध्यम से ज्ञान का विकास होता था। शिष्य को प्रश्न करने की स्वतंत्रता थी और गुरु का कर्तव्य था कि वह तर्कसंगत उत्तर दे। इस संवादात्मक पद्धति ने आलोचनात्मक सोच, तर्कशक्ति और बौद्धिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में विभिन्न दार्शनिक धाराएँ समानांतर रूप से विकसित हो सकीं।

9.5 तक्षशिला और नालंदा : प्राचीन विश्वविद्यालयों की परंपरा =भारतीय शिक्षा परंपरा केवल गुरुकुलों तक सीमित नहीं रही, बल्कि आगे चलकर संगठित उच्च शिक्षण संस्थानों का भी विकास हुआ। इनमें तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालय प्राचीन विश्व के प्रमुख ज्ञान केंद्र थे। तक्षशिला को विश्व के प्राचीनतम विश्वविद्यालयों में से एक माना जाता है। यहाँ दर्शन, चिकित्सा, राजनीति, युद्धकला और भाषाओं का अध्ययन कराया जाता था। भारत के साथ-साथ मध्य एशिया और अन्य क्षेत्रों से भी विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने आते थे। यह विश्वविद्यालय भारतीय ज्ञान परंपरा की अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा का प्रमाण है। नालंदा विश्वविद्यालय शिक्षा और अनुसंधान का एक महान केंद्र था। यहाँ हज़ारों विद्यार्थी और आचार्य निवास करते थे। दर्शन, बौद्ध अध्ययन, तर्कशास्त्र, गणित और चिकित्सा जैसे विषयों में गहन अध्ययन और शोध होता था। नालंदा की विशाल पुस्तकालय प्रणाली इस बात का प्रमाण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान के संरक्षण और प्रसार को अत्यंत महत्व दिया गया।

9.6 सामाजिक उत्तरदायित्व और शिक्षा -भारतीय शिक्षा परंपरा में शिक्षा को समाज से अलग नहीं किया गया। विद्यार्थी को यह बोध कराया जाता था कि वह समाज का अभिन्न अंग है और उसके कर्तव्य केवल स्वयं तक सीमित नहीं हैं। शिक्षा का उद्देश्य ऐसे नागरिकों का निर्माण करना था, जो समाज में न्याय, करुणा और संतुलन स्थापित कर सकें। राजा, प्रशासक, चिकित्सक और आचार्य—सभी के लिए शिक्षा का एक नैतिक आधार निर्धारित किया गया था। इससे यह सुनिश्चित होता था कि सत्ता और ज्ञान का उपयोग लोककल्याण के लिए हो, न कि स्वार्थ के लिए।

9.7 औपनिवेशिक प्रभाव और परंपरा का क्षरण -औपनिवेशिक काल में भारतीय शिक्षा परंपरा को पिछड़ा और अप्रासंगिक बताकर हाशिए पर डाल दिया गया। गुरुकुल और पारंपरिक शिक्षण संस्थानों की उपेक्षा हुई और पाश्चात्य शिक्षा मॉडल को प्राथमिकता दी गई। इससे शिक्षा का नैतिक और सांस्कृतिक पक्ष कमजोर पड़ गया।

9.8 आधुनिक संदर्भ में गुरुकुल परंपरा की प्रासंगिकता - आज के युग में, जब शिक्षा अत्यधिक प्रतियोगी और अंक-केंद्रित हो गई है, गुरुकुल परंपरा की समग्र दृष्टि पुनः प्रासंगिक प्रतीत होती है। मूल्य-आधारित शिक्षा, गुरु-शिष्य संवाद और जीवन-कौशल का समावेश आधुनिक शिक्षा को अधिक मानवीय और संतुलित बना सकता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का सांस्कृतिक और सौंदर्यात्मक आयाम उसके साहित्य, कला और स्थापत्य में अत्यंत सजीव और गहन रूप में प्रकट होता है। भारतीय साहित्य—जैसे रामायण, महाभारत, पुराण, काव्य और नाटक—केवल कथा या मनोरंजन के साधन नहीं हैं, बल्कि वे जीवन-दर्शन, नैतिक मूल्यों और आध्यात्मिक चिंतन के संवाहक हैं। रामायण में आदर्श जीवन, कर्तव्य और मर्यादा का चित्रण मिलता है, जबकि महाभारत मानव जीवन की जटिलताओं, नैतिक द्वंद्वों और सामाजिक संघर्षों को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत करता है। पुराणों के माध्यम से ब्रह्मांड, सृष्टि, काल और धर्म की अवधारणाएँ जनसामान्य तक पहुँचती हैं। काव्य और नाटक—विशेषकर कालिदास जैसे कवियों की रचनाएँ—प्रकृति, प्रेम और करुणा को दर्शन से जोड़ती हैं। इस प्रकार भारतीय साहित्य ज्ञान परंपरा का वह सांस्कृतिक रूप है, जिसमें बौद्धिक गहराई और भावनात्मक संवेदनशीलता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। भारतीय कला और स्थापत्य में भी यही समन्वय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्य, संगीत और वास्तुकला—सभी में आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्व अंतर्निहित हैं। मंदिर स्थापत्य केवल सौंदर्य प्रदर्शन नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय संरचना का प्रतीक माना गया है, जहाँ गर्भगृह आत्मा का और शिखर चेतना के उत्कर्ष का संकेत देता है। अजंता–एलोरा की गुफाएँ, कोणार्क और खजुराहो के मंदिर, तथा शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ—भरतनाट्यम, कथक, ओडिसी—यह दर्शाती हैं कि भारतीय सौंदर्यबोध केवल बाह्य रूप की प्रशंसा नहीं करता, बल्कि सौंदर्य को सत्य और चेतना से जोड़कर देखता है। *रस सिद्धांत* के माध्यम से भारतीय काव्यशास्त्र ने यह स्थापित किया कि कला का उद्देश्य केवल आनंद नहीं, बल्कि आत्मिक अनुभूति और भावनात्मक परिष्कार है। इस प्रकार साहित्य और कला भारतीय ज्ञान परंपरा को जनजीवन से जोड़ने वाले सेतु के रूप में कार्य करते हैं।

औपनिवेशिक काल में इस समृद्ध ज्ञान और सांस्कृतिक परंपरा का गंभीर अवमूल्यन हुआ। औपनिवेशिक शासकों ने भारतीय ज्ञान परंपरा को पिछड़ा, मिथकीय और अवैज्ञानिक सिद्ध करने का प्रयास किया। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को श्रेष्ठ और सार्वभौमिक बताकर भारतीय भाषाओं, साहित्य, दर्शन और पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को हाशिए पर धकेल दिया गया। गुरुकुल, पारंपरिक पाठशालाएँ और देशज ज्ञान-प्रणालियाँ धीरे-धीरे उपेक्षित हो गईं। औपनिवेशिक शिक्षा का उद्देश्य ऐसे मध्यवर्ग का निर्माण करना था, जो प्रशासन में सहायक हो, न कि ऐसे चिंतनशील नागरिकों का, जो अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े हों। परिणामस्वरूप ज्ञान को जीवन और नैतिकता से अलग कर दिया गया तथा शिक्षा को मात्र रोजगारोन्मुख बना दिया गया। इस प्रक्रिया में भारतीय ज्ञान परंपरा की समग्र, मूल्य-आधारित और मानवीय दृष्टि कमजोर पड़ गई। औपनिवेशिक विमर्श ने भारतीय विज्ञान, चिकित्सा और दर्शन को भी संदेह की दृष्टि से देखा। आयुर्वेद, योग, ज्योतिष और पारंपरिक गणितीय ज्ञान को अवैज्ञानिक बताकर खारिज किया गया, जबकि उनके अनुभवजन्य और प्रयोगात्मक आधारों को नज़रअंदाज़ किया गया। भारतीय साहित्य और कला को भी प्रायः केवल धार्मिक या लोककथात्मक मानकर उनकी दार्शनिक गहराई को कम करके आँका गया। इस बौद्धिक उपनिवेशवाद का प्रभाव इतना गहरा था कि स्वतंत्रता के बाद भी लंबे समय तक भारतीय शिक्षा और शोध में पाश्चात्य दृष्टिकोण को ही मानक माना जाता रहा।

स्वतंत्रता के बाद धीरे-धीरे भारतीय ज्ञान परंपरा के पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया आरंभ हुई। विद्वानों, शिक्षाविदों और दार्शनिकों ने यह स्पष्ट करना शुरू किया कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की

समस्याओं के समाधान में भी सक्षम है। भारतीय साहित्य, दर्शन, योग और आयुर्वेद पर नए सिरे से शोध होने लगे और इनके वैज्ञानिक, नैतिक तथा सामाजिक पक्षों को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत किया गया। शिक्षा नीति, संस्कृति अध्ययन और अंतर्विषयी शोध में भारतीय ज्ञान परंपरा को पुनः स्थान मिलने लगा। आधुनिक वैश्विक संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता और अधिक स्पष्ट होती जा रही है। सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण और मानसिक स्वास्थ्य जैसे मुद्दों पर विश्व समुदाय भारतीय दृष्टि की ओर देख रहा है। प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व, उपभोग में संयम और जीवन में संतुलन—ये सभी सिद्धांत भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल में हैं। योग और ध्यान को मानसिक स्वास्थ्य के प्रभावी साधन के रूप में वैश्विक स्वीकृति मिलना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी प्रकार आयुर्वेद और पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियाँ जीवन-शैली से जुड़ी बीमारियों के संदर्भ में पुनः महत्वपूर्ण मानी जा रही हैं। आज भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल राष्ट्रीय गौरव के रूप में नहीं, बल्कि वैश्विक मानवता के लिए एक वैकल्पिक और समग्र ज्ञान-दृष्टि के रूप में देखा जा रहा है। साहित्य और कला के माध्यम से यह परंपरा मानव संवेदनाओं को गहराई देती है, औपनिवेशिक अनुभव हमें आत्ममंथन का अवसर देता है, और आधुनिक पुनर्मूल्यांकन यह दिखाता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा समयातीत है। इस प्रकार, साहित्य, कला, औपनिवेशिक अनुभव और आधुनिक वैश्विक संदर्भ—इन सभी के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा न केवल जीवित है, बल्कि निरंतर विकसित होकर समकालीन विश्व को संतुलन, करुणा और विवेक का मार्ग दिखा रही है।

1. भट्टाचार्य, डी.सी. *भारतीय दार्शनिक चिंतन.* कोलकाता: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
2. मिश्रा, शिवकुमार. *भारतीय शिक्षा परंपरा.* दिल्ली: अटलांटिक।
3. शास्त्री, गोविन्द. *वेद और आधुनिक विज्ञान.* वाराणसी: चौखम्बा।
4. अग्रवाल, सुधीर. *भारतीय ज्ञान और वैश्वीकरण.* जयपुर: रावत।
5. पांडेय, सुधाकर. *धर्म और दर्शन.* इलाहाबाद: लोकभारती।
6. कुलकर्णी, आर.एस. *भारतीय संस्कृति का समाजशास्त्र.* पुणे: देशमुख।
7. श्रीवास्तव, नीलिमा. *ज्ञान परंपरा और आधुनिकता.* दिल्ली: प्रभात।
8. चौधरी, आनंद. *भारतीय दर्शन की समकालीन प्रासंगिकता.* जयपुर: पुस्तक महल।
9. सिंह, उमाशंकर. *भारतीय सांस्कृतिक चेतना.* पटना: भारती भवन।
10. भटनागर, मीनाक्षी. *भारतीय ज्ञान परंपरा और शिक्षा.* दिल्ली: पियरसन।
11. त्रिवेदी, रमेश. *वैदिक और उत्तरवैदिक चिंतन.* उज्जैन: महाकाल।
12. श्रीधर, के.एन. *योग, मन और समाज.* मैसूर: विश्वविद्यालय प्रेस।
13. पाण्डेय, अरुण. *भारतीय दर्शन और नैतिकता.* दिल्ली: ज्ञानदीप।
14. वाजपेयी, कृष्णदेव. *भारतीय बौद्धिक विरासत.* कानपुर: साहित्य भवन।
15. सेन, अमर्त्य. *नैतिकता और भारतीय चिंतन.* दिल्ली: ऑक्सफोर्ड हिंदी।